Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
June 2025
ISSN 2229-3388

पर्यावरण और भारतीय ज्ञान परंपरा

भूपेश कुमार
शोधार्थी, बाबा मस्तनाथ विश्वविधालय रोहतक
Email ID: bhupesh004@yahoo.com

शोध सारांश: सामान्यतया पर्यावरण का अर्थ प्राकृतिक जगत से लिया जाता है। भूमि, वायुमंडल, नदियां, झीलें, तालाब, समुद्र आदि जल स्रोत एवं जलीय जीव, पहाड़, वन यहां पर रहने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणी आदि सभी प्रकार के जीव पर्यावरण के घटक हैं। इसके अतिरिक्त अंतरिक्ष को भी इसमें हम जोड़ सकते हैं। चिरकाल से इन सभी घटकों के मध्य प्राकृतिक रूप से संतुलन स्थापित है। पर्यावरण हमारे अस्तित्व व विकास दोनों के लिए आवश्यक है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से मनुष्य ने अपने लाभ के लिए प्रकृति का दोहन किया है। यद्यपि प्रारंभ में ऐसा नहीं था परंतु पिछले कुछ दशकों से मनुष्य इस व्यवस्था से छेड़छाड़ करने पर उतारू है और वर्तमान में तो स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि अति संवेदनशील पर्यावरणीय संतुलन के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने का खतरा भी उत्पन्न हो गया है, परिणामस्वरुप मानव सभ्यता के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगता जा रहा है। नष्ट होते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर आज संपूर्ण विश्व चिंतित है। आजकल पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। 1700 ई. में पृथ्वी का औसत तापमान 15° से. था, जोकि 2050ई.में 16.5° और 2100ई.में 18°- 19° तक या इससे भी कहीं अधिक पहुंच सकता है। तापमान वृद्धि के कारण हिमालय और ध्रुवो तक की हजारों साल से जमी बर्फ पिघलने लगी है, इसके प्रभाव से आने वाले समय में नदियों में समय-समय पर भयंकर बाढ़ आ सकती है, समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटीय भूमि उसके गर्भ में समा सकती है।वर्तमान समय में वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है जो कि पर्यावरण संतुलन के लिए घातक है। पर्यावरण संतुलन के लिए वनों का एक निश्चित प्रतिशत बने रहना आवश्यक है।पश्चिम ने प्रकृति को भोग की वस्तु माना है जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति में पर्यावरण और प्रकृति कोई विषय नहीं अपितु जीवन पद्धति है। हमारी भारतीय संस्कृति, प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति संरक्षण की चिंतन धारा है। हमारे ऋषि-मुनि इतने उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे कि उन्होंने जड़ चेतन सभी तत्वों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए नियम बनाएं। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण की बातें कूट-कूट कर भरी पड़ी है।

Anusandhanvallari
Vol 2025, No.1
June 2025
ISSN 2229-3388

संकेत शब्दः पर्यावरण, भूमि, वायुमंडल, नदियां, झीलें, तालाब, समुद्र, जलीय जीव, पहाड़, वन, प्रकृति, दोहन, पर्यावरणीय संतुलन, प्रदूषण, पृथ्वी, तापमान,जलस्तर,भारतीय ज्ञान परंपरा, संस्कृति, ऋषि-मुनि, जड़, चेतन, पर्यावरण संरक्षण।

सामान्यतया पर्यावरण का अर्थ प्राकृतिक जगत से लिया जाता है। भूमि, वायुमंडल, नदियां, झीलें, तालाब, समुद्र आदि जल स्रोत एवं जलीय जीव, पहाड़, वन यहां पर रहने वाले विभिन्न प्रकार के प्राणी आदि सभी प्रकार के जीव पर्यावरण के घटक हैं। इसके अतिरिक्त अंतरिक्ष को भी इसमें हम जोड़ सकते हैं। चिरकाल से इन सभी घटकों के मध्य प्राकृतिक रूप से संतुलन स्थापित है। पर्यावरण हमारे अस्तित्व व विकास दोनों के लिए आवश्यक है। लेकिन पिछले कुछ दशकों से मनुष्य ने अपने लाभ के लिए प्रकृति का दोहन किया है। यद्यपि प्रारंभ में ऐसा नहीं था परंतु पिछले कुछ दशकों से मनुष्य इस व्यवस्था से छेड़छाड़ करने पर उतारू है और वर्तमान में तो स्थिति यहां तक आ पहुंची है कि अति संवेदनशील पर्यावरणीय संतुलन के पूर्ण रूप से नष्ट हो जाने का खतरा भी उत्पन्न हो गया है, परिणाम स्वरुप मानव सभ्यता के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगता जा रहा है। नष्ट होते पर्यावरण और बढ़ते प्रदूषण को लेकर आज संपूर्ण विश्व चिंतित है। आजकल पृथ्वी के तापमान में वृद्धि हो रही है। तापमान वृद्धि से अभिप्राय हमारे वर्तमान के चाल चलन, काम करने और खान-पान के तौर तरीके के कारण मुख्य रूप से मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड, कार्बन डाइऑक्साइड और फ्रेऑन गैसें काफी ज्यादा बढ़ रही हैं। इसके कारण पृथ्वी का तापमान बढ़ रहा है। 1700ई. में पृथ्वी का औसत तापमान 15° से. था, जोकि 2050 ई.में 16.5° और 2100 ई.में 18°- 19° तक या इससे भी कहीं अधिक पहुंच सकता है। (पर्यावरण दर्शन, ओम प्रभात अग्रवाल, पृ. 15) तापमान वृद्धि के कारण हिमालय और ध्रुवो तक की हजारों साल से जमी बर्फ पिघलने लगी है, इसके प्रभाव से आने वाले समय में नदियों में समय समय पर भयंकर बाढ़ आ सकती है, समुद्र का जलस्तर बढ़ने से तटीय भूमि उसके गर्भ में समा सकती है। पृथ्वी से 25 किलोमीटर ऊपर ओजोन परत है। ओजोन परत सूर्य से आने वाली पराबैंगनी किरणों को सीधे धरती पर पहुंचने में बाधा उत्पन्न करती है। सूर्य की किरणें ओजोन परत में से होकर आती हैं अगर किरणें सीधी आती है तो हम सब झुलस जाएंगे। इस प्रकार ओजोन परत सूर्य और धरती के प्राणियों के बीच एक रक्षा कवच है। वर्तमान समय में वनों की अंधाधुंध कटाई हो रही है जो कि पर्यावरण संतुलन के लिए घातक है। पर्यावरण संतुलन के लिए वनों का एक निश्चित प्रतिशत बने रहना आवश्यक है, सभ्यता के नाम पर न केवल भारतवर्ष अपितु पूरे

विश्व में यह काफी कम होता चला जा रहा है।पश्चिम ने प्रकृति को भोग की वस्तु माना है जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति में पर्यावरण और प्रकृति कोई विषय नहीं अपितु जीवन पद्धति है।

पर्यावरण संबंधी वैश्विक सम्मेलन:

पर्यावरण को लेकर विश्व समुदाय ने गंभीरता दिखाते हुए 20 वीं सदी के उतरार्द्ध तथा 21 वीं सदी के प्रारंभ में कई सम्मेलनों (https://www.un.org/en/conferences/environment/rio1992)का आयोजन किया।

- स्टॉकहोम सम्मेलन: 5 जून 1972ई. को स्वीडन के स्टॉकहोम शहर में एक सम्मेलन का आयोजन किया गया। इस सम्मेलन की वर्षगांठ के तौर पर प्रत्येक वर्ष 5 जून को विश्व पर्यावरण दिवस मनाने का निर्णय में लिया गया। यह मानव स्वास्थ्य और पर्यावरण को स्थाई कार्बनिक प्रदूषण से बचने के लिए एक वैश्विक संधि थी।
- हेलसिंकी सम्मेलन: इसका आयोजन फिनलैंड देश के हेलसिंकी शहर में 1974 ई.में किया गया। इस सम्मेलन का मुख्य विषय समुद्री पर्यावरण की रक्षा करना रखा गया था, लेकिन विषय को स्पष्ट रूप से परिभाषित नहीं किए जाने के कारण यह सम्मेलन असफल रहा।
- लंदन सम्मेलन: लंदन सम्मेलन का आयोजन 1975 ई.लंदन में किया गया था। इस सम्मेलनका मुख्य विषय समुद्री कचरे का निस्तारण रखा गया था। जिसके अंतर्गत बाह्य स्रोतों से आने वाले कचरे को बाहर ही रोकने और समुद्र में विद्यमान कचरे का प्रभावी निस्तारण करने का निर्णय हुआ।
- वियना सम्मेलन: यह ओजोन परत के संरक्षण के लिए एक बहुपक्षीय पर्यावरण समझौता था। इस सम्बन्ध में 1985 ई.के वियना सम्मेलन में सहमति बनी और 1988 ई.में यह लागू किया गया। इस सम्मेलन में मानव स्वास्थ्य और ओजोन परत में परिवर्तन करने वाली मानवीय गतिविधियों की रोकथाम के लिए प्रभावी उपाय अपनाने पर सदस्य देशों ने प्रतिबद्धता व्यक्त की।
- मॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल: ओजोन परत को नुकसान पहुंचाने वाले विभिन्न पदार्थों के उत्पादन तथा उपभोग पर नियंत्रण के उद्देश्य के साथ विश्व के कई देशों ने 16 सितंबर 1987 ई.कोमॉन्ट्रियल प्रोटोकॉल पर हस्ताक्षर किए थे।जिसे आज विश्व का सबसे सफल प्रोटोकॉल माना जाता है।इस उपलक्ष्य में 16 सितंबर को ओजोन दिवस के रूप में मनाया जाता है।

- टोरंटो सम्मेलन: 14वां G7 शिखर सम्मेलन कनाडा के टोरंटो में 19 से 21 जून 1988 ई.के बीच आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन का मुख्य विषय ग्रीनहाउस गैसों के अंतर्गत आने वाली गैस कार्बन डाइऑक्साइड रखा गया था। इस सम्मेलन में सभी राष्ट्र एक समान रूप से भागीदार नहीं हुए परिणामस्वरूप यह सम्मेलन असफल हो गया।
- पृथ्वी शिखर सम्मेलन: पर्यावरण और विकास पर संयुक्त राष्ट्र सम्मेलनजिसे 'पृथ्वी शिखर सम्मेलन' के रूप में भी जाना जाता है, 3-14 जून 1992 ई.तक ब्राजील के रियो डी जनेरियो में आयोजित किया गया था। इस शिखर सम्मेलन में 192 देशों के प्रतिनिधियों ने संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन पर फ्रेमवर्क को स्वीकार किया था। इस संधि में जलवायु परिवर्तन के लिए जिम्मेदार कार्बन उत्सर्जन में कमी लाने के लिए अन्तर्राश्ट्रीय प्रयासों की बात कही गई थी। पृथ्वी शिखर सम्मेलन' की कई महान उपलब्धियाँ थीं। रियो घोषणा और इसके 27 सार्वभौमिक सिद्धांत में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन पर ढांचा सम्मेलन (UNFCCC), वन प्रबंधन नियमों की घोषणा और जैविक विविधता पर कन्वेंशन सतत विकास के लिए भागीदारी और विशिष्ट समूहों के महत्व पर जोर दिया गया है।रियो घोषणा में कहा गया है कि दीर्घकालिक आर्थिक प्रगति के लिए पर्यावरण संरक्षण, मानव-केंद्रितपर्यावरण और विकास और प्रकृति के साथ उसका सामंजस्य, देशों को अपनी सीमाओं के भीतर प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करने की स्वतंत्रता, गरीबी उन्मूलनपर्यावरण संरक्षण को सतत विकास के केंद्र में रखा जाना चाहिए, और विकासशील देशों को विशेष सहायता प्रदान की जानी चाहिए।
- क्योटो प्रोटोकॉल: यह एक अंतरराष्ट्रीय संधि है जिसे ग्लोबल वार्मिंग द्वारा हो रहे जलवायु परिवर्तन को रोकने के लिए 11 दिसंबर 1997 ई.को अपनाया गया था इस सम्मेलन में सभीराष्ट्र एक मत होकर कार्बन डाइऑक्साइड में कटौती के लिए सहमत हुए।
- पेरिस समझौता: जलवायु परिवर्तन पर कानूनी रूप से बाध्यकारी अंतर्राष्ट्रीय संधि है। इसे 12 दिसंबर 2015 ई.को पेरिस, फ्रांस में संयुक्त राष्ट्र जलवायु परिवर्तन सम्मेलन (COP21) में 196 देशों द्वारा अपनाया गया था। यह 4 नवंबर 2016 ई.को लागू हुआ। इसका व्यापक लक्ष्य "वैश्विक औसत तापमान में वृद्धि को नियंत्रित करना" है। पूर्व औद्योगिक स्तरों से 2 डिग्री सेल्सियस से नीचे" और "पूर्व औद्योगिक स्तरों से तापमान वृद्धि को 1.5 डिग्री सेल्सियस तक सीमित करने

के प्रयास" करें। पेरिस समझौता बहुपक्षीय जलवायु परिवर्तन प्रक्रिया में एक मील का पत्थर था, क्योंकि पहली बार यह समझौता सभी को एक साथ लाता है। जलवायु परिवर्तन और इसके प्रभावों से निपटने के लिए सभी राष्ट्र एक साथ आएं।

वातावरण में बढ़ रही विषमता के कारण सामान्य जीवन के लिए उत्पन्न होते हुए संकटों के प्रति आज पूरा विश्व गंभीर रूप से चिंता ग्रस्त है। इसी को ध्यान में रखते हुए 1992 ई.के क्योटो प्रोटोकॉल व 2015 ई.के पेरिस समझौते को छोड़कर कोई सार्थक पहल नहीं हो पाई है। पेरिस समझौते में ग्रीन हाउस और गैसों के उत्सर्जन में कमी की जो प्रतिबद्धताएं विभिन्न देशों ने की है, उनसे भी तापमान में औद्योगीकरण प्रारंभ होने के बाद हुई वृद्धि को दो डिग्री की सीमा में रख पाना असंभव होगा। संयुक्त राष्ट्र के जलवायु परिवर्तन पर हो रहे आधारभूत सम्मेलनों (UNFCCC) में कोई सार्थक समझौता नहीं हो पाया है। अनियंत्रित उपभोग एवं उत्पादन केंद्रित आर्थिक वृद्धि के दौड़ में बढ़ रहे ऊर्जा व अन्य संसाधनों के उपभोग से अधिकांश प्राकृतिक संसाधन आगामी 40 से 70 वर्षों में समाप्त होते चले जाएंगे। प्रकृति म हमारी जरूरत पूरी करने कि क्षमता तो है लेकिन हमारे लालच, लालसा ओर स्वार्थ को पूरा करने में प्रकृति असमर्थ है। वर्तमान समय में जब उपभोगवाद ही हमारी संतुष्टि का लक्ष्य बन गयाहै। नए-नए उत्पादों का निर्माण होने लगा। इसके लिए प्राकृतिक संसाधनों के शोषण की गति बढ़ गई। जिससे आज हम इस गंभीर स्थिति में पहुंच गए हैं कि प्राकृतिक संसाधन अब सांसत में है। उत्पादन के युग में प्रदूषण का फैलाव हो रहा है। संसाधनों का जर्जर होना और प्रदूषण, पर्यावरण संकट के दो महत्वपूर्ण पक्ष हैं। परंतु सूची बहुत लंबी है पृथ्वी पर ग्रीनहाउस का प्रभाव भी दिखने लगा है। ओजोन परत में छिद्र बढ़ रहा है।तापमान बढ़ने सेभूमि की उपजाऊशक्ति कम हो रही है। वन संपदा का विनाश भी एक संकट के रूप में असर डाल रहा है। इससेपर्यावरण की गुणवत्ता घट रही है। मानव समाज का जीवन दुर्गम हो रहा है। इनपरिस्थितियों के कारण मानव जीवन ही नहीं प्रकृति में अन्य प्राणियों का जीवन भी कठिन हो गया है। इस प्रकार प्रकृति का शोषण एवं पर्यावरण काविनाश कर हम इस अजीबोगरीब स्थिति में जा पहुंचे हैं। विकास की अंधाधुंध दौड़ में हम अपने संसाधनों का उपयोग गैर जिम्मेदाराना तरीके से करके विकास को गतिरोध में बदल रहे हैं।

भारतीय चिंतन दृष्टि एवं ज्ञान परंपरा में पर्यावरण:

पर्यावरण का अर्थ प्रकृति जगत से है। पृथ्वी पर विद्यमान पेड़-पौधों व सूक्ष्म जीवियों से लेकर कीट-पतंगों व मनुष्य पर्यंत सभी जीवधारी एक बड़ी सीमा तक परस्पर अवलम्बित है। सभी एक दूसरे के अस्तित्व और विकास के लिए आवश्यक है। समूची सृष्टि पंचमहाभूत अर्थात् अग्नि, जल, पृथ्वी, वायु और आकाश से बनी है। यही पांच तत्व मिलकर समूचे विश्व ब्रह्मांड के जड़, चेतन का निर्माण और पोषण करते हैं। यदि यह जीवनदायी तत्व शुद्ध और संरक्षित रहें तो जीवन भी शुद्ध और सुरक्षित रहता है। इन पांच तत्वों का सम्मिलित स्वरूप ही पर्यावरण है। पर्यावरण का संतुलन ही जीवनचक्र को नियंत्रित करता है और इसमें गतिरोध आते ही जीवन संकट में पड़ जाता है। यही कारण है कि इसकी सुरक्षा की चिंता प्राचीनकाल से होती आ रही है।

भारतीय उपमहाद्वीप में प्रथम सभ्यता उत्तर पश्चिम क्षेत्र में विकसित हुई। इस सभ्यता के प्रमुख स्थल सरस्वती और सिंधु नदियों के आस-पास मिलने के कारण ही इस संस्कृति को सरस्वती-सिंधु सभ्यता के नाम से जाना जाता है। इसके प्रमुख नगर हड़प्पा, मोहनजोदड़ो, राखीगढ़ी, लोथल, धोलावीरा इत्यादि सुव्यवस्थित योजना के अनुसार बनाए और बसाए गए थे। यहां की आबादी काफी सघन थी । मकान सड़कों के किनारे बने हुए थे और उनके बनाने में पक्की ईंटें लगाई गई थी। उस समय भी प्रत्येक मकान में कुएं और स्नानागार थे। मोहनजोदड़ो में जल निकासी की व्यवस्था शानदार थी। घरों की नालियों के द्वारा सारा गंदा पानी एक बड़ी नाली में जाकर गिरता था। यह बड़ी नालियां पक्की इंटों से पूरी तरह ढकी रहती थी ताकि बदबू से वायु प्रदूषण अथवा नालियों में मच्छर आदि उत्पन्न होने से प्रदूषण की संभावना न हो। इस सभ्यता की अद्वितीय सीवरेज प्रणाली को देखकर ऐसा लगता है कि जैसे उनकी व्यवस्था सुचारू रूप से कोई नगरपालिका करती हो। मोहनजोदड़ो में एक बड़ा तालाब मिला है जिसकी लंबाई 39 फीट चौड़ाई 23 फुट और गहराई 8 फीट है। इसका निर्माण पक्की इंटों से किया गया था। तालाब के चारों ओर छोटे- छोटे कमरे बने हुए थे। पानी तक पहुंचाने के लिए सीढ़ियां बनी हुई थी। इस प्रकार के विशाल स्नानागार नहाने में सामूहिक व्यवस्था को दर्शाते हैं। यहाँ से मिली मोहरों पर पीपल के चित्र उकेरे हुए मिलते है जो इस वृक्ष के संरक्षण और पूजन की और संकेत करते है।

वेदकालीन महर्षिगणों ने पर्यावरणकी आवश्यकता एवं महत्ता को ध्यान में रखकर इसे शुद्ध एवं संरक्षित रखने हेतु नियम बना लिए थे। हिंदू धर्म का प्रकृति के साथ गहरा रिश्ता है।वेदों उपनिषदों पुराणों और स्मृतियों में पर्यावरण संरक्षण एवं संतुलन का महत्व अनेक प्रसंगों में वर्णित किया गया है।ऋग्वेद में वायु

के औषधीय महत्त्व को स्वीकारा गया है। ऋग्वेद की ऋचा कहती है- हे वायु! अपनीऔषधि ले आओ और यहां से सब दोष दूर करो, क्योंकि तुम ही सभी औषधियों से भरपूर हो। ऋग्वेद का एक अन्य मंत्र जल की शुद्धता का वर्णन करते हुए कहता है, आओ सभी मिल कर प्रवाहित जल के प्रशंसा के गीत गाएं जो हजारों धाराओं से स्फटिक की तरह बहकर आंखों को आनंद देता है। उपनिषदों ने ऊर्जा के अपरिमित स्रोत सूर्य को जगत् की आत्मा कहकर उसकी अभ्यर्थना की है, सूर्य को प्राण की संज्ञा दी है। यज्ञों के माध्यम से वायुमंडल को शुद्ध करना भी वेदों का विषय रहा है। वैदिककाल में पर्यावरण के परिष्कार के लिए यज्ञ हवन संपन्न किए जाते थे।भारतीय वैदिक संस्कृति में पर्यावरण को विशिष्ट स्थान प्राप्त है। इसके संरक्षण एवं विकास पर हमारी संस्कृति पूर्णतः जागरूक रही है। यहाँ मानव जीवन को सदैव एवं अमूर्त रूप में पृथ्वी, जल, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्र, नदी, वृक्ष एवं पशु-पक्षी आदि को सहचर्य में ही देखा है। (भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, वीरेन्द सिंह यादव,IJSIRS)

यजुर्वेद में दिए गए शांति पाठ में सृष्टि के समस्त तत्व व कारकों से शांति बनाए रखने की प्रार्थना की जाती है। इसमें कहा गया है कि हे परमात्मा गगन, थल, वायु, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति, विश्व, देवतागण एवं ब्रह्मा सब में शांति हो। चारों और शांति हो। शांति हो। शांति हो । शांति हो। शांति मंत्र में पर्यावरण संतुलन या सद्भाव को बनाए रखने हेतु भारतीय ऋषियों द्वारा प्रार्थना की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिककालीन ऋषि पर्यावरण के प्रत्येक रूप की रक्षा एवं संतुलन के प्रति कितने सजग थे। उन्होंने जन सामान्य में श्रद्धाभाव जागृत कर प्रकृति के समस्त रूपों को अशांत अर्थात् सांप्रतिक परिप्रेक्ष्य में प्रदूषित न करने की प्रेरणा दी।

ॐ द्यौः शान्तिरन्तरिक्ष शान्तिः
पृथ्वी शान्तिरापः शान्तिरोषधयः शान्तिः ।
वनस्पतयः शान्तिर्विश्वे देवाः शान्तिर्ब्रह्म शान्तिः
सर्वं शान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सा मा शान्तिरेधि ॥
ॐ शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ (यजुर्वेद 36.17)

पश्चिम ने प्रकृति को भोग की वस्तु माना है जबकि भारतीय ज्ञान परंपरा एवं संस्कृति में पर्यावरण और प्रकृति कोई विषय नहीं अपितु हमारी जीवन पद्धति है। हमारी भारतीय संस्कृति प्रकृति प्रेम एवं प्रकृति संरक्षण की चिंतन धारा है। हमारे ऋषि मुनि इतने उच्च कोटि के वैज्ञानिक थे कि उन्होंने जड़ चेतन सभी

तत्वों की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए नियम बनाएं। यही कारण है कि हमारे प्राचीन ग्रंथों में पर्यावरण संरक्षण की बातें कूट-कूट कर भरी पड़ी है।

भारत भूमि को छोड़कर दुनिया में कहीं भी इस प्रकार के प्रकृति संरक्षण के संस्कार नहीं है। हिंदू धर्म में प्रकृति पूजन को प्रकृति संरक्षण के रूप में मान्यता दी गई है, ग्रह-नक्षत्र, पहाड़, वायु, जल आदि को देवता कह कर संबोधित किया गया है। तुलसी, गंगा, धरती व गाय को माता तुल्य माना गया है। नाग, पशु को देवता के रूप में पूजा जाता है। भारतीय संस्कृति में देवताओं के वाहन पशु- पक्षी हैं। इंद्र का वाहन एरावत हाथी, गणेश का मूषक, कार्तिकेय का मोर, माँ दुर्गा का शेर, विष्णु जी का गरुड़, ब्रह्मा व सरस्वती जी का हंस, भगवान शिव का वाहन बैल है अर्थात भारतीय परम्परा में आदिकाल से पशु-पक्षियों को पूजा जाता रहा है तथा जैव संरक्षण हमारी संस्कृति के मूल में है।

भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था का बड़ा महत्वपूर्ण स्थान रहा है। जंगल को हमारे ऋषि आनंददायक मानते थे। इसीलिए उन्होंने चार महत्वपूर्ण आश्रमों में से तीन पहले तीसरे और चौथेब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और सन्यास का सीधा संबंध वनों से किया था तथा दूसरे गृहस्थ आश्रम को वनों पर आश्रित बताया।

वैदिक ऋषियों ने भी पर्यावरण संरक्षण और सुरक्षा का दायित्व निभाया है। अरण्यों में रहकर पर्यावरण के प्रति विशेष जागरुक रहने वाले ऋषियों ने आरण्यक साहित्य का सृजन कर विश्व में पर्यावरण के महत्व को रेखांकित किया है। आरण्यक, ब्राह्मण ग्रंथों एवं उपनिषदों के बीच की कड़ी हैं। *'अरण्ये भवमेति आरण्यकम्'*कहकर आरण्यक का अर्थ स्पष्ट किया गया है कि जो अरण्य से सम्बद्ध है वही आरण्यक है। बृहदारण्यक भी *'अरण्येनूत्यमानत्वात् अरण्यकम्*के रूप में इसका समर्थन करता है। इसका विषय प्राणविद्या है। अंतरिक्ष और वायु से प्राण का संबंध अन्योन्याश्रित है। पर्यावरण के जैविक और अजैविक तत्वों में भी वायु और अंतरिक्ष का विशेष योगदान रहता है। सृष्टि के सभी तत्वों में इन दोनों का समावेश है। इन्हीं गुणों के कारण सृष्टि के सभी तत्वों को प्राणशक्ति मिलती है जिससे विकास की गति अग्रसर होती है।

इसके अतिरिक्त हस्तिनापुर (1000ई.पू. से 700 ई.पू.) एवं 500 ई.पू. के अनेक शहर जैसे श्रावस्ती, चम्पा, राजगृह, साकेत, कौशांबी तथा काशी भी पाए गए, जहां पर जल निकासी की व्यवस्था में स्वच्छता का विशेष ध्यान रखा जाता था। गीता में भगवान कृष्ण अर्जुन को उपदेश देते हुए कहते हैं: *अश्वत्थः सर्ववृक्षाणां* (गीता)अर्थात मैं समस्त वृक्षों में अश्वत्थ (पीपल) वृक्ष हूँ। परिमाण और आयुमर्यादा दोनों की

दृष्टि से अश्वत्थ अर्थात् पीपलवृक्ष को सर्वव्यापक और नित्य माना जा सकता है। क्योंकि वह प्राय कई शताब्दियों तक जीवित रहता है। हिन्दू लोग इसकी पूजा करते हैं। उसके साथ दिव्यता और पवित्रता की भावना जुड़ी हुई है। इसी प्रकार से ब्रह्मनन्द पुराण में कहा गया है :

गंगे च यमुने चैव गोदावरि सरस्वति,
नर्मदे सिन्धु कावेरि जलऽस्मिन्सन्निधिं कुरु ।(ब्रह्मानंद पुराण)

अर्थात् हे गंगा, यमुना, गोदावरी, सरस्वती, नर्मदा, सिंधु कावेरी नदियों ! (मेरे स्नानकरने के लिए) इस जल में (आप सभी) पधारिये। यह मन्त्र स्नान से पूर्व बोला जाता है। भारतीय परम्परा में नदियाँ को भी पूजा जाता रहा है। नदियों का पानी निर्मल, पवित्र, अप्रदूषित होता था। यही कारण है कि सभी प्राचीन नगर नदियों के किनारे बसे हुए हैं।

हिंदू परंपरा में वृक्ष की महत्ता 10 पुत्रों के समान बताई गई है। मत्स्य पुराण में कहा गया है कि 10 कुओं के समान एक तालाब, 10 तालाबों के समान एक सरोवर 10 सरोवरों के समान एक पुत्र तथा 10 पुत्रों के समान एक वृक्ष का महत्व है। जीव-जंतु पेड़-पौधे सब जल पर निर्भर है। जल एवं वृक्षों के बिना पृथ्वी पर जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती इसलिए जल एवं वन का संरक्षण अति आवश्यक है।

दशकूपसमावापी दशवापी समो ह्रदः ।
दशह्रदसमः पुत्रो दशपुत्रसमो द्रुमः ।। मत्स्यपुराण (154.511-512)

ऐसे ही वृक्षों का महत्व वराह पुराण में बताते हुए कहा गया है की एक व्यक्ति जो एक पीपल, एक नीम, एक बरगद, दस फूलवाले पौधो अथवा लताएं, दो अनार, दो नारंगी और पांच आम के वृक्ष लगाता है, वह नर्क में नहीं जाएगा।

अश्वत्थमेकं पिचुमन्दमेकं न्यग्रोधमेकं दश पुष्पजातीः ।
द्वे द्वे तथा दाडिममातुलिंगे पंचाम्ररोपी नरकं न याति।। वराहपुराण (172.39)

इसी प्रकार से लगे हुए पेड़ पौधों के संरक्षण का उल्लेख विष्णु धर्मोत्तर पुराण में मिलता है:

चनादपि वृक्षस्य रोपितस्य परेण तु ।
महत्फलमवाप्नोति नात्र कार्या विचारणा । विष्णुधर्मोत्तरपुराण (3.296.17)

अर्थात दूसरे द्वारा रोपित वृक्ष का सिंचन करने से भी महान् फलों की प्राप्ति होती है, इसमें विचार करने की आवश्यकता नही है।

हमारे ऋषि-मुनि जानते थे कि प्रकृति जीवन का स्रोत है और पर्यावरण के समृद्ध और स्वस्थ होने से ही हमारा जीवन भी समृद्ध और सुखी होता है। उन्होंने जीवन के आध्यात्मिक पक्ष पर गहरा चिंतन किया, पर पर्यावरण पर भी उतना ही ध्यान दिया। जो कुछ पर्यावरण के लिए हानिकारक था, उसे आसुरी प्रवृत्ति कहा और जो हितकर है, उसे दैवीय प्रवृत्ति माना। चाणक्य, अशोक और सम्राट विक्रमादित्य ने भी वनो की सुरक्षा को महत्व दिया है। चाणक्य ने तो इसके लिए आरण्यपालो की नियुक्ति की बात भी कही है। हमारे शास्त्रों में पर्यावरणीय घटकों की शुद्धता के लिए हमें एक अमोघ उपाय प्रदान किया गया है। वह उपाय हैं यज्ञ। यज्ञ आध्यात्मिक उपासना का साधन होने के साथ, पर्यावरण को शुद्ध करने, उसे रोग और कीटाणुरहित रखने तथा प्रदूषणरहित करने का भी साधन है। भारतीय संस्कृति की यह शैली रही है कि इसमें जीवन के जिन कर्तव्यों अथवा मूल्यों को श्रेष्ठ और आवश्यक माना गया है, उन्हें धार्मिकता और पुण्य के साथ जोड़ दिया गया है, ताकि लोग उनका पालन अनिवार्य रूप से करें। जैसे कि तुलसी, पीपल की रक्षा आदि ।

मानव विकास की दौड़ एवं मानव की भोगवादी प्रवृति एवं विलासितापूर्ण जीवन ने ही प्राकृतिक संसाधनों के दोहन एवं शोषण में तीव्र वृद्धि की है जिससे मानव का अस्तित्व ही संकट में पड़ता दिख रहा है। भारत की जनसंख्या विश्व की 18% है लेकिन हमारे पास विश्व के शुद्ध जल स्रोतों में मात्र 4% स्रोत की सुलभ है। 1947 ई. में भारत में जल की वार्षिक प्रति व्यक्ति उपलब्धता 5000 घन मीटर थी, जो 2000ई. में घटकर 2000 घन मीटर प्रतिवर्ष प्रति व्यक्ति रह गई है तथा 2025 ई. तक मात्र 1500 घन मीटर प्रति वर्ष प्रति व्यक्ति हो जाने की संभावना है। जहां एक जल की प्रति व्यक्ति मात्रा घटकर जल संकट की संभावना बता रही है, वहीं दूसरी ओर नहरी सिंचित क्षेत्र में अवैज्ञानिक सिंचाई व अनियंत्रित जल उपयोग के कारण जल प्लावन, लवणीयता एवं शोरा आदि फैलाकर उपजाऊ भूमि को बंजर बनती जा रही है।
इस प्रकार यह स्पष्ट है कि हमें अपनी संस्कृति ,सभ्यता और इतिहास की जड़ों की तरफ लौटने की आवश्यकता है। हमारे पूर्वज प्रकृति प्रेमी थे। हमारे देवता वनस्पति एवं जीव-जंतुओं से जुड़े हुए थे। हमारे ऋषि-मुनि प्रकृति के सानिध्य में रहकर ही आध्यात्मिक ज्ञान की साधना में रत थे। हमें पश्चिम का अंधानुकरण करने की बजाय अपने पूर्वजों की दृष्टिऔर विचारधारा का अनुसरण करते हुए पर्यावरण एवं प्रकृति के अनुरूप अपने जीवन शैली को ढालने की

आवश्यकता है। ताकि वर्तमान में पृथ्वी एवं पृथ्वी पर निवास करने वाले सभी जीव-जंतुओं के जीवन का समुचित विकास हो सके।

संदर्भ:

1. ऋग्वेद
2. यजुर्वेद
3. बृहदारण्यक
4. गीता
5. ब्रह्मानंद पुराण
6. मत्स्यपुराण
7. वराहपुराण
8. विष्णुधर्मोत्तरपुराण
9. विष्णु दत्त शर्मा,पर्यावर्णीय प्रदूषण, आर्य प्रकाशन मण्डल, दिल्ली, 1994.
10. भगवती प्रकाश शर्मा, पर्यावरण और हम,विधा भारती संस्कृति शिक्षा संस्थान, कुरुक्षेत्र, 2022.
11.ओम प्रभात अग्रवाल,पर्यावरण दर्शन,सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2017.
12. डॉ बजरंग लाल गुप्त,पर्यावरण प्रेमी हिन्दू दृष्टि,नवमसंस्करण,सुरुचि प्रकाशन, नई दिल्ली, 2022.
13. वीरेन्द सिंह यादव, भारतीय संस्कृति और पर्यावरण संरक्षण, International Journal of Scientific & Innovative Research Studies ISSN: 2347-7660 (Print) ISSN: 2454-1818 (Online) Vol (3), Issue-9, September- 2015.
14. https://unfccc.int/process-and-meetings/the-paris-agreement
15. https://www.un.org/en/conferences/environment/rio1992